कबीरदास का समाज दर्शन

मोनिका रानी
एम.टी. 98, भट्टू कलाँ
जिला फतेहाबाद, हरियाणा
पिन 125053

हिन्दी साहित्य के इतिहास का द्वितीय चरण भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वि. संवत् 1375 से 1700 तक के कालखण्ड को सामान्यतः दो भागों में विभक्त किया गया है – निर्गुण धारा एवं सगुण धारा । निर्गुण धारा के अन्तर्गत – ज्ञानाश्रयी शाखा एवं प्रेमाश्रयी शाखा है तथा सगुण धारा के अन्तर्गत रामकाव्य एवं कृष्णकाव्य है । ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों को संत कवि कहा जाता है । कबीर इस शाखा के प्रतिनिधि कवि है । कबीर को कवि कम और समाज सुधारक ज्यादा कहा गया है ।

कबीर का समाज दर्शन

कबीर का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराईयों से ग्रस्त था । छुआछुत, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार, पाखण्ड का बोलबाला था और हिन्दू और मुसलमान आपस में झगड़ते रहते थे । धार्मिक पाखण्ड अपनी चरम सीमा पर था और धर्म के ठेकेदार स्वार्थ की रोटियाँ धार्मिक उन्माद के चूल्हे पर सेंक रहे थे । धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के कारण समाज का संतुलन बिगड़ रहा था, कुरीतियों और कुप्रथाओं का बोलबाला था तथा सामाजिक विषमता बढ़ती जा रही थी । उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी, जो समाज में व्याप्त इन बुराईयों पर निर्भीकता से प्रहार कर सके, दोनो धर्मों के अनुयायियों को बिना किसी भेदभाव के फटकार सके और सदाचरण का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना करे । कबीर ही इस आवश्यकता की पूर्ति करते थे । कबीर ने विभिन्न क्षेत्रों में समाज सुधार का स्तुत्य प्रयास किया । उनके द्वारा किए गए इस प्रयास को निम्न शीर्षकों द्वारा समझा जा सकता है –

1. राम–रहीम की एकता का प्रतिपादन –

कबीर चाहते थे कि हिन्दू – मुसलमान प्रेम एवं भाईचारे की भावना से एक साथ मिलकर रहे । उन्होंने राम और रहीम की एकता स्थापित करते हुए बताया कि ईश्वर दो नहीं हो सकते । यह तो लोगों का भ्रम है जो खुदा को परमात्मा से अलग मानते है ।

"दुई जगदीस कहाँ ते आया । कहु कौने भरमाय । ।" 1

मुसलमानों की भाँति उन्होंने मुर्तिपूजा का खण्डन किया, एकेश्वरवाद को मान्यता दी और अवतारवाद का विरोध किया ।

2. जाति–प्रथा का खण्डन –

कबीर भक्त और कवि बाद में है, समाज सुधारक पहले है । उनकी कविता का उद्देश्य जनता को उपदेश देना और उसे सही रास्ता दिखाना है । उन्होंने जो गलत समझा उसका निर्भीकता से खण्डन किया । अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति की ईमानदारी कबीर की सबसे बड़ी विशेषता है । कबीर ने समाज में व्याप्त जाति–प्रथा, छुआछुत एवं ऊँच–नीच की भावना पर प्रहार करते हुए कहा कि जन्म के आधार पर कोई ऊँचा नहीं होता, ऊंचा वह है जिसके कर्म अच्छे है :

"ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय ।
सुवरन कलस सुरा भरा साधू निन्दत सोय ।।"2

3. मूर्ति–पूजा का विरोध–

कबीर ने समाज में व्याप्त मूर्ति–पूजा का डटकर विरोध किया । वे सामान्य जनता को समझाते हुए कहते है कि मूर्ति–पूजा से भगवान नहीं मिलते, इससे तो अच्छा है कि घर की चाकी को पूजा जाए :

"पाहन पूजै हरि मिले तौ मैं पूंजू पहार ।
घर की चाकी कोई न पूजै पीस खाय संसार ।।"3

4. जीव हिंसा का विरोध –

कबीर ने धर्म के नाम पर व्यापत हिंसा का विरोध किया । हिन्दुओं में शाक्तों और मुसलमानों में कुर्बानी देने वालों को उन्होंने निर्भीकता से फटकारा और कहा कि दिन में रोजा रखने वाले रात को गाय काटते हैं । इस कार्य से भला खुदा कैसे प्रसन्न हो सकता है :–

"दिन में रोजा रहत हैं राति हनत हैं गाय ।
यह तौ खून वह बंदिगी कैसे खुसी खुदाय ।।"4

5. हिन्दू–मुस्लिम पाखण्ड का खण्डन :

कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को फटकारा । वे एक ओर हिन्दूओं के तीर्थाटन, छापा, तिलक का विरोध करते हैं तो दूसरी ओर रोजा, नमाज, अजान का । वे कहते हैं कि माला फेरने से नहीं, मन की शुद्धि से ईश्वर प्रसन्त होता है :

"माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर ।
कर का मनका डारि कै मन का मनका फेर ।।"5

मुसलमान दिन भर रोजा रखकर रात को यदि गोहत्या करके ईश्वर को प्रसन्न करना चाहे तो यह निरा भ्रम है । ईश्वर इससे प्रसन्न होने वाला नहीं है । वे समाज में व्याप्त बुराईयों के कटु आलोचक हैं किन्तु उनकी आलोचना सुधार भावना से प्रेरित है । वे साफ कहते है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों को सही मार्ग नहीं मिला :

"अरे इन दोउन राह न पाई ।
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई ।।"
"खाला केरी बेटी ब्याहै, घर ही में करे सगाई ।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुअन न देहीं ।
वेश्या के पायन तर सौवें यह देखो हिंदुआई ।।"6

कबीर पढ़े लिखे न थे, किन्तु उनमें अनुभूमि की सच्चाई एवं अभिव्यक्ति का खारापन विद्यमान था । वे अनुभवजन्य सत्य पर विश्वास करते है न कि शास्त्रोत्क बातों पर । शास्त्र के पण्डित को वे चुनौती देते हुए कहते हैं –

"तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आंखिन की देयी ।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राखा उरझोय रे ।।"7

कबीर प्रगतिशील चेतना से युक्त एक विद्रोही कवि थे । उनका व्यक्तित्व क्रातिकारी था । धर्म और समाज के क्षेत्र में व्याप्त पाखण्ड, कुरीतियों, रूढियो, अन्धविश्वासों की उन्होंने मुखर आलोचना की और ऊँच–नीच, छुआछूत जैसे सामाजिक कोढ़ को दूर करने के लिए भरसक प्रयास किया । ये सच है कि कबीर का मुख्य स्वर विद्रोह का था परन्तु वे मूल्यहीन विद्रोही नहीं थे । वे भक्त, कवि, समाज–सुधारक, लोक नेता सब एक साथ थे । कबीरदास ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए धर्म और उपासना के दरवाजे खोल दिए । इसलिए कबीरदास ने निर्गुण उपासना पर जोर देते हुए कहा है –

"जैसे तिल में तेल है, ज्यों चकमक में आग ।

तेरा साई तुझमें, तु जाग सके तो जाग ।।''8

कबीर के ईश्वरोपासना की माँग वास्तव में आर्थिक और सामाजिक न्याय की मांग थी । कबीर की माँग उन बनावटी एवं ऊपर से लादी हुई मर्यादाओं और परम्पराओं को तोड़ने की माँग थी जो विशाल जनसमूह को उसके अधिकारों से वंचित किए हुए थी । वे जन–समाज में होने वाले हर प्रकार के शोषण को मिटा देना चाहते थे । इसलिए उन्होंने कहा था –

''कबीरा कुआं एक है, पानी भरै अनेक ।
बर्तन में ही भेद है, पानी सब में एक ।।''

उपसंहार:

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जाता सकता है कि कबीर सिर से पैर तक मस्त मौला थे । स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्कड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अछूत, कर्म से वन्दनीय थे । कबीरदास ने सामाजिक विरोध को समाप्त करके आपसी सहयोग एवं प्रेमभाव और मानवतावादी विचारों की धारा को प्रवाहित किया है । इस सम्बंध में डॉ0 शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है –

''यह कहकर कि साई के सब जीव है, कीरी कुंजर दोय' उन्होंने मानव मात्र की समानता का सिद्धान्त प्रचारित किया है । कबीर यह मान्यता थी कि व्यक्ति समाज की इकाई है । समाज की सप्राणता और सुगठिता व्यक्ति के गुणों और आचरण पर निर्भर करती है । समाज की समरूपता तभी सम्भव है जब जाति, वर्ण और वर्ग भेद न्यून हो । अतः कबीर की साधना वैयक्तिक और आध्यात्मिक होते हुए भी समाष्टि परक है।''

संदर्भ

1. सरस्वती पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, पृ0 101
2. डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास
3. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
4. सरस्वती पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, पृ0 101

5. सरस्वती पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, पृ0 102
6. सरस्वती पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, पृ0 101
7. सरस्वती पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, पृ0 101
8. डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास